IMPACT FACTOR 5.397 (SJIF USA)
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 1, January-March, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

# स्वतंत्र भारत में माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप : ऐतिहासिक विकास, वैचारिक आधार और समकालीन परिप्रेक्ष्य

**1. पवन कुमार**
**शोधार्थी**
**शिक्षाशास्त्र संकाय**
**(बी आर ए बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर)**
**2. डॉ0 रेणु बाला**
**सहायक प्राध्यापक (दर्शनशास्त्र विभाग)**
**रामबृक्ष बेनीपुरी महिला महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर**

**सार–संक्षेप**

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के समक्ष एक ऐसी शिक्षा–व्यवस्था के निर्माण की चुनौती थी, जो औपनिवेशिक ढाँचे की सीमाओं से मुक्त होकर लोकतांत्रिक आदर्शों, सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय विकास की आवश्यकताओं को अभिव्यक्त कर सके। इस परिप्रेक्ष्य में माध्यमिक शिक्षा को विशेष महत्त्व प्राप्त हुआ, क्योंकि यही वह चरण है जहाँ विद्यार्थी के बौद्धिक, नैतिक तथा सामाजिक व्यक्तित्व का व्यवस्थित विकास होता है। औपनिवेशिक काल में यह शिक्षा मुख्यतः अभिजन–केन्द्रित, परीक्षा–प्रधान और प्रशासनिक आवश्यकताओं तक सीमित थी, जबकि स्वतंत्र भारत ने इसे व्यापक सामाजिक परिवर्तन और नागरिक निर्माण का माध्यम बनाने का प्रयास किया।

स्वतंत्रता के बाद गठित विभिन्न शिक्षा आयोगों ने माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप को नई दिशा प्रदान की। राधाकृष्णन आयोग (1948–49) ने शिक्षा में सांस्कृतिक मूल्यों एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के संतुलन पर बल दिया। इसके पश्चात मुदालियर आयोग (1952–53) ने माध्यमिक शिक्षा को लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला मानते हुए पाठ्यक्रम में विविधता, सह–शैक्षिक गतिविधियों तथा व्यक्तित्व विकास को प्रमुखता दी। आगे चलकर कोठारी आयोग (1964–66) ने 10+2+3 प्रणाली तथा समान विद्यालय व्यवस्था की संकल्पना प्रस्तुत कर शिक्षा को सामाजिक समानता और राष्ट्रीय प्रगति से जोड़ा।

इन आयोगों की अनुशंसाओं के आधार पर निर्मित राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ क्रमशः 1968–86 (संशोधित 1992) और 2020– ने माध्यमिक शिक्षा को क्रमशः राष्ट्रीय एकता, समान अवसर और समकालीन कौशल–आधारित आवश्यकताओं की दिशा में विकसित किया। विशेष रूप से नई शिक्षा नीति 2020 ने 5+3+3+4 संरचना के माध्यम से माध्यमिक स्तर को पुनर्परिभाषित करते हुए बहुविषयकता, डिजिटल दक्षता तथा जीवन–कौशल को इसके केंद्र में स्थापित किया है।

इसके बावजूद वर्तमान परिदृश्य में माध्यमिक शिक्षा अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है, जिनमें डिजिटल असमानता, ग्रामीण–शहरी विभाजन, प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी तथा मूल्य–आधारित शिक्षा का क्षरण आदि प्रमुख हैं।

प्रस्तुत शोध–आलेख स्वतंत्र भारत में माध्यमिक शिक्षा के ऐतिहासिक विकास, उसके वैचारिक आधार और समकालीन चुनौतियों का विश्लेषण करता है तथा यह प्रतिपादित करता है कि माध्यमिक शिक्षा आज भी लोकतांत्रिक भारत के सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्निर्माण की एक सशक्त आधारशिला बनी हुई है।

**शब्द कुंजी–** माध्यमिक शिक्षा, राष्ट्र–निर्माण, शिक्षा आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, लोकतांत्रिक मूल्य, कौशल–आधारित शिक्षा, सामाजिक समानता, डिजिटल साक्षरता

## विषय–परिचर्चा

### स्वतंत्रता के समय माध्यमिक शिक्षा की स्थिति–

1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय माध्यमिक शिक्षा गंभीर संरचनात्मक संकट से गुजर रही थी। औपनिवेशिक शिक्षा–नीति का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज का समग्र विकास न होकर ब्रिटिश शासन की प्रशासनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। परिणामस्वरूप शिक्षा–व्यवस्था एक संकीर्ण, उपयोगितावादी और अभिजन–केन्द्रित स्वरूप ग्रहण कर चुकी थी, जिसमें माध्यमिक शिक्षा विशेष रूप से शहरी वर्ग तक सीमित थी[1]।

औपनिवेशिक काल में माध्यमिक शिक्षा का विस्तार योजनाबद्ध रूप से नहीं हुआ। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यालयों की संख्या अत्यंत कम थी और अधिकांश जनसंख्या शिक्षा की पहुँच से बाहर थी। 1947 में भारत की साक्षरता दर लगभग 12 प्रतिशत थी[2], जो शिक्षा के सीमित प्रसार का स्पष्ट संकेत थी। सामाजिक स्तर पर भी स्त्रियाँ, अनुसूचित जातियाँ तथा अनुसूचित जनजातियाँ माध्यमिक शिक्षा से लगभग वंचित थीं। जातिगत और लैंगिक असमानताओं ने शिक्षा तक पहुँच को और अधिक कठिन बना दिया था।पाठ्यक्रम और शिक्षण–पद्धति भी अनेक कमियों से ग्रस्त थी। शिक्षा मुख्यतः रटंत प्रणाली पर आधारित थी, जिसमें समझ, विश्लेषण और सृजनात्मकता की अपेक्षा स्मरण–शक्ति को अधिक महत्व दिया जाता था[3]। पाठ्यक्रम भारतीय समाज की वास्तविक समस्याओं, संस्कृ

ति और जीवन–मूल्यों से पर्याप्त रूप से जुड़ा नहीं था। परिणामस्वरूप शिक्षा विद्यार्थियों के जीवन से कटे हुए ज्ञान का रूप ले चुकी थी। शिक्षक–प्रशिक्षण की स्थिति भी संतोषजनक नहीं थी। प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव, शिक्षण की पारंपरिक पद्धतियाँ तथा आधुनिक मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षण सिद्धांतों से अनभिज्ञता के कारण शिक्षण की गुणवत्ता प्रभावित होती थी। कक्षा–कक्ष में विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी का अभाव रहता था और शिक्षण एकतरफा प्रक्रिया बनकर रह गया था।

इसके अतिरिक्त, माध्यमिक शिक्षा का मूल्य–आधार भी कमजोर था। शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा उत्तीर्ण करना और सीमित रोजगार प्राप्त करना बन गया था। नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्तरदायित्व और राष्ट्रीय चेतना के विकास पर अपेक्षित बल नहीं दिया गया। प्रशासनिक स्तर पर भी शिक्षा–व्यवस्था में एकरूपता का अभाव था। विभिन्न प्रांतों में अलग–अलग नीतियाँ लागू थीं तथा विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं और वित्तीय संसाधनों की भारी कमी थी।

उपरोक्त परिस्थितियों ने स्पष्ट कर दिया कि स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए माध्यमिक शिक्षा में व्यापक परिवर्तन आवश्यक हैं। यदि भारत को लोकतांत्रिक, समतामूलक और आधुनिक राष्ट्र बनाना था, तो शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्रीय विकास के साधन के रूप में पुनर्गठित करना अनिवार्य था[4]।

## स्वतंत्र भारत की शिक्षा–नीति की वैचारिक पृष्ठभूमि

स्वतंत्रता के पश्चात भारत के समक्ष केवल राजनीतिक स्वतंत्रता को बनाए रखना ही लक्ष्य नहीं था, बल्कि लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक समन्वय पर आधारित समाज का निर्माण भी आवश्यक था। इसी व्यापक दृष्टिकोण ने स्वतंत्र भारत की शिक्षा–नीति की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार की। शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन की प्रक्रिया न मानकर सामाजिक परिवर्तन और राष्ट्र–निर्माण का प्रभावी माध्यम माना गया। शिक्षा के माध्यम से ऐसे नागरिकों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया जो स्वतंत्र विचार, सहिष्णुता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे लोकतांत्रिक मूल्यों को समझ सकें। विद्यार्थियों में आलोचनात्मक चिंतन, निर्णय–क्षमता और सहभागिता की भावना विकसित करने पर बल दिया गया।धर्मनिरपेक्षता भी शिक्षा–नीति का महत्वपूर्ण आधार बनी। शिक्षा को किसी एक धर्म से जोड़ने के बजाय सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और सह–अस्तित्व की भावना विकसित करने का माध्यम माना गया। इसी प्रकार समाजवाद की अवधारणा ने शिक्षा को समान अवसर और सामाजिक न्याय से जोड़ा। वंचित वर्गों, महिलाओं तथा ग्रामीण समुदायों तक शिक्षा पहुँचाने को विशेष प्राथमिकता दी गई। राष्ट्रीय एकता का विचार भी शिक्षा–नीति के केंद्र में था। भारत की बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक संरचना को ध्यान में रखते हुए शिक्षा को राष्ट्रीय एकीकरण का माध्यम माना गया। पाठ्यक्रम में भारतीय इतिहास, संस्कृति और स्वतंत्रता संग्राम को समाहित कर विद्यार्थियों में राष्ट्रीय चेतना विकसित करने का प्रयास किया गया।स्वतंत्र भारत की शिक्षा–दृष्टि में भारतीय संस्कृति और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समन्वय पर विशेष बल दिया गया[5]।

नीति–निर्माताओं का मानना था कि केवल परंपरागत ज्ञान या केवल आधुनिक विज्ञान समाज के समग्र विकास के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए शिक्षा में नैतिक मूल्यों, सांस्कृतिक विरासत और वैज्ञानिक तर्कशीलता का संतुलित समावेश आवश्यक माना गया। माध्यमिक शिक्षा को इस व्यापक दृष्टिकोण में विशेष महत्व प्राप्त हुआ। किशोरावस्था के विद्यार्थियों के बौद्धिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास को ध्यान में रखते हुए इस स्तर पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सृजनात्मकता, तार्किकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के विकास पर बल दिया गया। वैश्विक मानवतावादी और विकासवादी विचारों का भी भारतीय शिक्षा–नीति पर प्रभाव पड़ा[6]। शिक्षा को मानव संसाधन विकास, आर्थिक प्रगति और व्यक्ति की गरिमा से जोड़कर देखा गया।

वस्तुतः स्वतंत्र भारत की शिक्षा–नीति की वैचारिक पृष्ठभूमि बहुआयामी और समन्वयवादी थी, जिसमें राष्ट्रीय आदर्शों, सांस्कृतिक परंपराओं और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का संतुलित समावेश दिखाई देता है।

## शिक्षा आयोग और माध्यमिक शिक्षा

स्वतंत्रता के बाद भारतीय शिक्षा–व्यवस्था के पुनर्गठन में विभिन्न शिक्षा आयोगों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। विशेष रूप से राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग और कोठारी आयोग ने माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्य और दिशा को नई दृष्टि प्रदान की।

### (क) राधाकृष्णन आयोग (1948–49)

राधाकृष्णन आयोग का मुख्य फोकस उच्च शिक्षा था, किन्तु इसके विचारों का प्रभाव माध्यमिक शिक्षा पर भी पड़ा। आयोग ने शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का माध्यम न मानकर व्यक्ति के नैतिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया माना। आयोग के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना होना चाहिए जो नैतिक रूप से सुदृढ़, सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील और सामाजिक रूप से उत्तरदायी हों।राधाकृष्णन आयोग ने भारतीय दर्शन और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के समन्वय पर विशेष बल दिया[7]। आयोग का मानना था कि शिक्षा में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के साथ वैज्ञानिक सोच और तर्कशीलता का समावेश होना चाहिए। इस दृष्टिकोण ने माध्यमिक शिक्षा को केवल परीक्षा–केन्द्रित प्रणाली से आगे बढ़ाकर मूल्यपरक और संतुलित स्वरूप प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त किया।

**(ख) मुदालियर आयोग (1952–53)**

मुदालियर आयोग माध्यमिक शिक्षा पर केंद्रित पहला महत्वपूर्ण आयोग था। इसने स्पष्ट किया कि माध्यमिक शिक्षा केवल उच्च शिक्षा की तैयारी का माध्यम नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक समाज की आधारशिला है। आयोग ने माध्यमिक विद्यालय को ऐसे संस्थान के रूप में परिभाषित किया जहाँ विद्यार्थियों को जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए तैयार किया जाए।

आयोग ने दो–स्तरीय संरचना–उच्च और उच्चतर माध्यमिक स्तरकृका प्रस्ताव दिया। इसके साथ ही पाठ्यक्रम–विविधीकरण पर बल देते हुए विद्यार्थियों की रुचियों और क्षमताओं के अनुरूप विभिन्न विषय–विकल्प उपलब्ध कराने की अनुशंसा की। मुदालियर आयोग ने सह–शैक्षिक गतिविधियों, खेल, वाद–विवाद और सांस्कृतिक कार्यक्रमों को शिक्षा का अभिन्न अंग माना। साथ ही सतत एवं समग्र मूल्यांकन की अवधारणा को महत्व दिया, जिससे विद्यार्थियों के विकास का आकलन केवल वार्षिक परीक्षा तक सीमित न रहे[8]। इस आयोग ने माध्यमिक शिक्षा को अधिक व्यावहारिक, विद्यार्थी–केंद्रित और व्यक्तित्व–विकासोन्मुख बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

**(ग) कोठारी आयोग (1964–66)**

कोठारी आयोग भारतीय शिक्षा के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इस आयोग ने शिक्षा को राष्ट्रीय विकास की केंद्रीय शक्ति के रूप में स्थापित किया। माध्यमिक शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक प्रगति और राष्ट्रीय एकता से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ा गया।

आयोग की सबसे महत्वपूर्ण देन 10+2+3 संरचना थी, जिसने भारतीय शिक्षा–व्यवस्था को सुव्यवस्थित ढाँचा प्रदान किया। आयोग ने माध्यमिक स्तर पर सामान्य शिक्षा के साथ व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा को भी महत्व दिया।कोठारी आयोग ने 'समान विद्यालय प्रणाली' की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसका उद्देश्य शिक्षा में सामाजिक असमानताओं को कम करना था। आयोग का मानना था कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सभी वर्गों के विद्यार्थियों को समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिए।

व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देना भी आयोग की महत्वपूर्ण अनुशंसा थी[9]। आयोग ने स्पष्ट किया कि केवल अकादमिक शिक्षा पर अत्यधिक बल देने से बेरोजगारी की समस्या बढ़ सकती है। इसलिए माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों को रोजगारोन्मुख कौशलों से परिचित कराना आवश्यक है।

इस प्रकार, इन आयोगों ने माध्यमिक शिक्षा को संकीर्ण परीक्षा–केन्द्रित प्रणाली से निकालकर व्यापक, समाजोन्मुख और बहुआयामी स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

**राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ और माध्यमिक शिक्षा**

स्वतंत्र भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों ने माध्यमिक शिक्षा के विकास को नई दिशा प्रदान की। 1968, 1986/1992 और 2020 की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ इस विकास–क्रम की प्रमुख अवस्थाएँ हैं।

**(क) राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1968**

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1968 स्वतंत्र भारत की पहली संगठित शिक्षा–नीति थी, जिसका आधार कोठारी आयोग की अनुशंसाएँ थीं। इस नीति का उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, लोकतांत्रिक मूल्यों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को सुदृढ़ करना था।

माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर इस नीति ने विद्यार्थियों में राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक समरसता और वैज्ञानिक सोच विकसित करने पर बल दिया। 'त्रिभाषा सूत्र' इसी नीति की महत्वपूर्ण देन थी, जिसके माध्यम से भाषाई एकता और संवाद को सुदृढ़ करने का प्रयास किया गया[10]। इसके अतिरिक्त विज्ञान–शिक्षा को विशेष प्राथमिकता दी गई, ताकि विद्यार्थियों में तर्कशीलता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित हो सके। इस नीति ने माध्यमिक शिक्षा को आधुनिकता और राष्ट्रीय विकास से जोड़ने का प्रयास किया।

**(ख) राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986/1992**

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–1986 तथा 1992 के संशोधन ने शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन और समान अवसर के माध्यम के रूप में पुनर्परिभाषित किया। इस नीति का मुख्य लक्ष्य शिक्षा का लोकतंत्रीकरण और समावेशन था।

इस नीति ने अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों और महिलाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया[11]। महिला–शिक्षा को सामाजिक विकास की आधारशिला माना गया।

माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा दिया गया, ताकि विद्यार्थी व्यावहारिक कौशल प्राप्त कर आत्मनिर्भर बन सकें। साथ ही सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के उपयोग की दिशा में प्रारंभिक प्रयास किए गए, जिससे शिक्षा अधिक आधुनिक और प्रभावी बन सके।

**(ग) राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020**

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भारतीय शिक्षा–व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन का प्रतिनिधित्व करती है। इस नीति ने 5+3+3+4 संरचना के माध्यम से माध्यमिक शिक्षा को पुनर्गठित किया। कक्षा 9 से 12 तक के स्तर को अधिक लचीला, बहुविषयक और विद्यार्थी–केंद्रित बनाया गया है।इस नीति की प्रमुख विशेषता बहुविषयकता है। विद्यार्थियों को विज्ञान, कला और वाणिज्य जैसी पारंपरिक सीमाओं से परे विभिन्न विषयों का चयन करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई[12]।इस नीति में डिजिटल साक्षरता,

कौशल–आधारित शिक्षा, नवाचार और अनुभवात्मक अधिगम पर विशेष बल दिया गया है। विद्यार्थियों को केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित न रखकर उन्हें समस्या–समाधान, उद्यमिता और जीवन–कौशल से युक्त बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।इसके साथ ही आलोचनात्मक चिंतन, सृजनात्मकता और मूल्य–आधारित शिक्षा को भी महत्व दिया गया है, ताकि विद्यार्थी उत्तरदायी नागरिक के रूप में विकसित हो सकें।

इस प्रकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों ने समय–समय पर माध्यमिक शिक्षा को राष्ट्रीय आवश्यकताओं और वैश्विक परिवर्तनों के अनुरूप नया स्वरूप प्रदान किया है।

## माध्यमिक शिक्षा के सामाजिक प्रभाव और चुनौतियाँ

स्वतंत्र भारत में माध्यमिक शिक्षा ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। यह शिक्षा का वह महत्वपूर्ण स्तर है, जहाँ विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, विचार और सामाजिक चेतना का विकास होता है। परिणामस्वरूप इसका प्रभाव केवल व्यक्तिगत उन्नति तक सीमित न रहकर सामाजिक संरचना और राष्ट्रीय विकास पर भी दिखाई देता है।

माध्यमिक शिक्षा ने लोकतांत्रिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके माध्यम से विद्यार्थियों में अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूकता, समानता, स्वतंत्रता और सहिष्णुता जैसे मूल्यों का विकास हुआ है। विद्यालयी गतिविधियों और सामाजिक सहभागिता ने उन्हें जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए प्रेरित किया है[13]।स्त्री–सशक्तीकरण के क्षेत्र में भी माध्यमिक शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। बालिकाओं की शिक्षा में वृद्धि से उनके आत्मविश्वास, निर्णय–क्षमता और सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है। इसी प्रकार सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित वर्गों के विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा तथा रोजगार के अवसर प्राप्त हुए, जिससे सामाजिक गतिशीलता को बल मिला। तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के समावेशन ने युवाओं की रोजगार–क्षमता को बढ़ाया है। कंप्यूटर शिक्षा, कौशल–आधारित प्रशिक्षण और तकनीकी ज्ञान ने विद्यार्थियों को आधुनिक श्रम–बाजार की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया है।

हालाँकि माध्यमिक शिक्षा आज अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है। डिजिटल विभाजन के कारण ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच तकनीकी संसाधनों की उपलब्धता में व्यापक अंतर है[14]। शिक्षको का अभाव, ग्रामीण–शहरी विषमता तथा आधारभूत सुविधाओं की कमी भी शिक्षण की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा के बढ़ते निजीकरण ने गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को महँगा बना दिया है, जिससे आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए अवसर सीमित होते हैं।

वस्तुतः माध्यमिक शिक्षा ने सामाजिक चेतना, लैंगिक समानता और सामाजिक गतिशीलता को निश्चित रूप से सुदृढ़ किया है, किन्तु इसे अधिक समावेशी, सुलभ और गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए वर्तमान चुनौतियों का समाधान आवश्यक है।

## निष्कर्ष

स्वतंत्र भारत में माध्यमिक शिक्षा का विकास एक दीर्घकालिक एवं परिवर्तनशील प्रक्रिया का परिणाम है। औपनिवेशिक काल की संकीर्ण, परीक्षा–प्रधान और अभिजन–केन्द्रित व्यवस्था से निकलकर यह आज अधिक समावेशी, समाजोन्मुख और लोकतांत्रिक स्वरूप ग्रहण कर चुकी है। स्वतंत्रता के पश्चात माध्यमिक शिक्षा को केवल ज्ञानार्जन का माध्यम न मानकर राष्ट्र–निर्माण, सामाजिक परिवर्तन और उत्तरदायी नागरिकों के निर्माण का सशक्त उपकरण माना गया। इस परिवर्तन में विभिन्न शिक्षा आयोगों और राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। मुदालियर आयोग ने पाठ्यक्रम–विविधीकरण, सह–शैक्षिक गतिविधियों और व्यक्तित्व–विकास पर बल दिया, जबकि कोठारी आयोग ने 10+2+3 संरचना, समान विद्यालय प्रणाली तथा व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम से शिक्षा को राष्ट्रीय विकास और सामाजिक समानता से जोड़ा। इसी आधार पर निर्मित राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों–1968, 1986/1992 तथा 2020 ने क्रमशः राष्ट्रीय एकता, सामाजिक न्याय, समावेशन, कौशल–विकास और डिजिटल शिक्षा को बढ़ावा दिया। इसके बावजूद माध्यमिक शिक्षा आज भी डिजिटल विभाजन, ग्रामीण–शहरी विषमता, शिक्षको की कमी, निजीकरण और मूल्य–संकट जैसी चुनौतियों का सामना कर रही है। इन समस्याओं का समाधान किए बिना शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ण प्राप्ति संभव नहीं है। उपरोक्त चुनौतियों के बावजूद भी वर्तमान में माध्यमिक शिक्षा भारतीय समाज के विकास की आधारशिला बनी हुई है। यह लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और आर्थिक प्रगति को सुदृढ़ करते हुए राष्ट्र–निर्माण में केंद्रीय भूमिका निभा रही है।

इस प्रकार, निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि स्वतंत्र भारत में माध्यमिक शिक्षा ने एक लंबी यात्रा तय करते हुए अपने स्वरूप, उद्देश्य और कार्यक्षेत्र में व्यापक परिवर्तन किया है। वर्तमान में आवश्यकता इस बात की है कि इसके समक्ष विद्यमान चुनौतियों का समुचित समाधान करते हुए इसे और अधिक समावेशी, गुणवत्तापूर्ण और प्रासंगिक बनाया जाए, ताकि यह राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया में अपनी केंद्रीय और प्रभावी भूमिका को निरंतर बनाए रख सके।

**संदर्भ–**


1. शर्मा, आर0 एन0, भारतीय शिक्षा का इतिहास, रू रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, (2010), पृ0 212–215
2. भारत सरकार, शिक्षा पर केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड (CABE) की रिपोर्ट, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली, (1950), पृ0 15–18।
3. राधाकृष्णन आयोग, विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग रिपोर्ट (1948–48), भारत सरकार प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, (1949), पृ0 12–14।
4. भट्टाचार्य, एस0, स्वतंत्रता–उत्तर शिक्षा नीतियाँ, ओरिएंट लॉन्गमैन, नई दिल्ली, (2005), पृ0 105–107।
5. पूर्वोक्त, पृ0 108–110।
6. पूर्वोक्त पृ0 112–115।
7. राधाकृष्णन आयोग, विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग रिपोर्ट (1948–49), भारत सरकार प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, (1949), पृ0 10–16।
8. मुदालियर आयोग, माध्यमिक शिक्षा आयोग रिपोर्ट (1952–53), रू भारत सरकार प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, (1953), पृ0 55–65।
9. कोठारी आयोग, शिक्षा आयोग रिपोर्ट (1964–66), रू भारत सरकार, नई दिल्ली, (1966), पृ0 38–55।
10. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 : शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली, (1968), पृ0 5–32।
11. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (संशोधित 1992), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, (1992), पृ0 45–55।
12. भारत सरकार, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली, (2020), पृ0 39–68।
13. तिवारी, रामशंकर, भारतीय समाज और शिक्षा, रू रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, (2011), पृ0 201–228।
14. वर्मा, ए0 एस0, समकालीन शिक्षा की चुनौतियाँ, किंग्स पब्लिकेशन, नई दिल्ली, (2012), पृ0 101–108।